बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 290

खत्म हो संरक्षणवादी रुख

बीते कुछ वर्षों की बात करें तो भारत ने टैरिफ में कमी करने की अपनी नीति को उलटकर संरक्षणवाद को बढ़ावा देना शुरू कर दिया है। हकीकत यह है कि आए दिन आयात प्रतिस्थापन के सरकारी प्राथमिकता में होने की बात होने लगी है। इसके पीछे यह अतार्किक दलील दी जाती है कि देश के घरेलू उद्योग शिशुवत हैं और उन्हें बचाव की आवश्यकता है। हवाई अड्डों पर शुल्क मुक्त मदिरा खरीद को सीमित करने तथा अन्य श्रेणी में कई अन्य उत्पादों के आयात को सीमित करने के प्रस्ताव में भी संरक्षणवाद की झलक महसूस की जा सकती है। हाल के वर्षों में प्रस्तुत बजट में भी आयात शुल्क बढ़ाकर खुलापन लगाने की चौथी सदी पुरानी प्रक्रिया को उलट दिया गया। वर्ष 2019-20 के बजट में वह प्रक्रिया जारी रखी गई जिसके तहत आयात शुल्क मनमाने ढंग से बदला गया। काजू से लेकर संगमरमर और फर्नीचर से लेकर वाहन कलपुर्जों तक तमाम वस्तुओं के आयात पर शुल्क बढ़ाया गया। परंतु उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने के लिए शुल्क बढ़ाने से उत्पादन की लागत बढ़ती है और वह गैर प्रतिस्पर्धी होता है। इसका असर लोगों के जीवन पर भी पड़ता है।

वैश्विक मूल्य शृंखला के दौर में शुल्क बढ़ाने और व्यापार समझौतों से बाहर रहने से केवल भारतीय निर्यातकों का नुकसान हो रहा है। इससे निवेश संभावनाएं धूमिल होती हैं और वृद्धि में धीमापन आता है। जाहिर है कि अपनी व्यापार नीति में मनमाना बदलाव करने वाला देश या घरेलू लॉबीइंग के कारण शुल्क बढ़ाने वाला देश ऐसी मूल्य शृंखला में शामिल नहीं हो पाएगा। संरक्षणवादी नीति और शुल्क दरों से जुड़ी अनिश्चितता विदेशी कंपनियों को भारत में अपने विनिर्माण संयंत्र स्थापित करने को लेकर हतोत्साहित करेगी। ऐसे निर्णय भारतीय उद्योगों को भी नुकसान पहुंचाएंगे क्योंकि किसी भी उद्योग के शुल्क में बढ़ोतरी अन्य उद्योगों में उसके उपयोगकर्ता को प्रभावित करेगी। व्यापारिक साझेदार इस पर प्रतिक्रिया भी कर सकते हैं।

सबसे बुरी बात, सरकार के इस रुख में विदेशी निवेशकों को लेकर शत्रुता का भाव नजर आता है। प्रधानमंत्री भले ही अपने स्तर पर भारत के प्रचार-प्रसार में कोई कसर नहीं छोड़ते लेकिन उनकी सरकार के बाकी हिस्से इस सिलसिले को आगे बढ़ाते नहीं दिखते। घाटे में चल रही विदेशी स्वामित्व वाली ई-कॉमर्स कंपनियों को हाल ही में लुटेरा करार दिया गया। ई-कॉमर्स में हुए निवेश को लेकर यह नकारात्मकता ऐसे निवेश से बनने वाले लॉजिस्टिक्स बुनियादी ढांचे और रोजगारों के प्रति जोखिम पैदा करती है। सरकार ने कई बार कहा है कि वह भारत को निवेश के अनुकूल बनाना चाहती है। उसने नियमन आसान बनाने, संचालन सुधारने और बुनियादी परियोजनाओं को विश्व भर में पेश करने जैसी कवायद की है। इसके बावजूद यह स्पष्ट है कि निवेश के बाद नियम बदलने से भारत की निवेशकों के अनुकूल छवि खराब होती है।

कुलमिलाकर यह स्पष्ट है कि यदि सरकार को मौजूदा मंदी के प्रभाव से निपटना है तो उसे अपना रुख बदलना होगा। इस मंदी के मूल में भी कमजोर निजी निवेश और मांग में गिरावट जैसी वजह ही हैं। समस्या का इकलौता हल खुलापन बढ़ाने में है। ऐसा करके ही वैश्विक बाजार की संभावनाओं का पूर्ण लाभ लिया जा सकता है। फिर चाहे बात पूंजी जुटाने की हो या उत्पादों की। सरकार का संरक्षणवादी रुख देश को पीछे धकेलने का काम करेगा। ऐसी लॉबी की बात सुनने के बजाय नीति निर्माताओं को ऐसी परिस्थितियां तैयार करनी चाहिए जिनसे घरेलू उद्योग वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बन सकें। आम बजट के रूप में सरकार के पास यह अवसर है कि वह संरक्षणवाद से किनारा कर सके।

अजय मोहंती

क्या अनचाहे हो रहा है अतिशय नियमन ?

अफसरशाही द्वारा नियम कायदों का जरूरत से ज्यादा प्रयोग करना और इस तरह कारोबारियों को परेशान करना अनजाने में हो रहा है या यह सोच समझकर किया जा रहा है ? बता रहे हैं **देवाशिष बसु**

बीते सात वर्षों से एक अटके हुए रिकॉर्ड की तरह मैं एक ही बात दोहरा रहा हूं कि भारत उच्च वृद्धि हासिल कर सकता है लेकिन लालफीताशाही का अंतहीन सिलसिला उद्यमों के लिए टकराव की वजह बन रहा है। जबकि ये उद्यम ही असली रोजगार प्रदाता हैं। इन दिनों तो रोजगार प्रदाताओं को राजनेताओं के ताने और उनके हाथों अपमान भी झेलना पड़ता है। कारोबारी आमतौर पर इसे स्वीकार कर लेते हैं। बहरहाल, ऐसा लगता है कि बीते छह वर्ष में आर्थिक मोर्चे पर एक के बाद एक जो नाकामियां हाथ लगी हैं और इस दौरान जो दंडात्मक शासन देखने को मिला है, वह लोगों को एक नई हकीकत से रूबरू करा रहा है।

भारत की वृद्धि दर लंबे समय तक कमजोर बनी रहेगी। हालांकि अर्थव्यवस्था वापसी करेगी लेकिन अतीत से बचकर निकलना मुश्किल है। कारोबारियों का धैर्य अब समाप्त होने को है और वे बदलाव की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बीते सप्ताह हमने देखा कि देश के दो शीर्ष उद्योगपति अत्यधिक नियमन, एक हद तक जबरन वसूली, नीतियों में मनमानी छेड़खानी और यहां तक कि प्रक्रिया के दौरान प्रताड़ना तक की शिकायत कर रहे हैं।

राजीव बजाज, जो अब तक कह रहे थे कि कोई मंदी नहीं है और अन्य उद्यमियों की पर्याप्त नवाचारी न होने के लिए आलोचना भी कर रहे थे, वह अचानक एक अलग गाना गुनगुनाने लगे हैं। उनका आरोप है कि अतिशय नियमन से उद्योग जगत को नुकसान पहुंच रहा है। टाटा संस के चेयरमैन एन चंद्रशेखरन कहते हैं, 'भारत सूक्ष्म प्रबंधन और आशंकाओं से ग्रस्त है। यदि उसे तेज गति से विकास करना है तो हमें उन बाधाओं को दूर करना होगा जो कारोबारों को घेरे हुए हैं।'

वर्ष 2014 से अधिकांश भारतीय कारोबारी यह मानते रहे हैं कि एक प्रतिबद्ध, राष्ट्रवादी सरकार नया भारत बनाने में लगी हुई है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से अपेक्षा की गई थी कि वह गुजरात की अपनी बहुप्रचारित सफलता पूरे देश में दोहराएंगे। उन्होंने सन 2014 का चुनाव विकास के वादे पर जीता था। जहां तक मुझे याद है मोदी के रूप में पहली बार एक राष्ट्रीय नेता ने अपने चुनावी भाषणों में लालफीताशाही समाप्त करने की बात कही थी। उन्होंने उत्साहित युवाओं से पूछा था, 'आपको नौकरी चाहिए कि नहीं चाहिए?' जाहिर है लोगों को उनसे उम्मीद थी कि वह कारोबारी जगत को बेतुकी लालफीताशाही से निजात दिलाएंगे। आखिर रोजगार कौन तैयार करता है? घर के आसपास मौजूदा किराना दुकान से लेकर बड़ी सॉफ्टवेयर कंपनियों तक यह काम कारोबार ही करते हैं, न कि सरकार।

दुर्भाग्य की बात है कि सन 2014 में ही सरकार का वास्तविक एजेंडा एकदम स्पष्ट हो गया था। यह बात दीगर है कि इसके बावजूद कारोबारी, वित्तीय क्षेत्र के विशेषज्ञ और मीडिया का अधिकांश हिस्सा व्यापक तौर पर भ्रम में ही जीता रहा। मोदी सरकार ने कांग्रेस सरकार की योजनाओं पर ही कंप्यूटर चिप लगाने का काम जारी रखा क्योंकि अब सबकुछ डिजिटल हो चुका था। यही नहीं इन्हें नए नाम से नए विचारों के रूप में प्रचारित किया गया।

हर विधायी बदलाव और नीति ने केवल उत्पीड़न, अतिक्रमण, आशंका, अपराधीकरण आदि को बढ़ाने का काम किया। छोटी-छोटी गलतियों और चूकों के लिए जेल का दंड दिया गया। एक भ्रष्ट देश में ये निजी और सरकारी दोनों तरह के उत्पीड़न का जरिया बन गए। इस बीच सामाजिक और राजनीतिक एजेंडे (गो संरक्षण, लिचिंग, राष्ट्रवाद, पाकिस्तान, कश्मीर, गांधी-नेहरू परिवार की कमियां आदि) ने आर्थिक बहस को पीछे छोड़ दिया।

एक कारोबारी क्षेत्र जो बुरी तरह प्रभावित हुआ वह है 150 सीसी की मोटर साइकिल की श्रेणी। यह एक बड़ा बाजार है। इसे पहला झटका तब लगा जब सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि शुरुआत में ही पांच साल का बीमा कराना अनिवार्य है। इससे वाहन कीमत में बीमा की कई हजार रुपये की राशि जुड़ गई। गत वर्ष अप्रैल में नए सुरक्षा मानकों से 8,000-10,000 रुपये और जुड़ गए। जैसा कि बजाज ने कहा कि केवल एक वर्ष में इन वाहनों की कीमत 20 फीसदी तक बढ़ गई। जबकि वाहन निर्माता कीमतों में सालाना 2 से 4 फीसदी का ही इजाफा करते हैं। बजाज ने कहा था, 'मैं इसे अतिशय नियमन मानता हूं। एक देश में जहां सड़कों की खस्ता हालत देखते हुए आप प्रतिघंटा 20 से 30 किलोमीटर से अधिक की गति से वाहन चलाने के लिए संघर्ष करते हैं, वहां एबीएस जैसे सुरक्षा मानक के लिए 8,000 से 10,000 रुपये की लागत थोपना गलत है।'

उन्होंने कहा, 'यह कहना राजनीतिक दृष्टि से गलत हो सकता है कि बीएस-6 को अपनाना सही नहीं है बल्कि उपयुक्त तरीका अपनाकर पुराने वाहनों से निजात पाना, बीएस-4 से हो रहे उत्सर्जन को और कम करने का कहीं अधिक अच्छा तरीका है। इसके बजाय हम अप्रैल से बीएस-6 अपना रहे हैं यानी आम आदमी के लिए वाहन कीमतों में 8,000 से 10,000 रुपये का और इजाफा। यानी डेढ़ साल में आम आदमी के लिए दोपहिया वाहन 30 फीसदी तक महंगे। मेरे लिए यह बहुत कठिन मुद्दा है। क्या सरकार कुछ नरमी दिखाते हुए इनमें से कुछ कदम वापस लेगी?'

बजाज को जानना चाहिए कि राज्य सत्ता चाहे किसी दल की हो, नरमी उसका गुण नहीं है। इस सरकार ने तो आधार से होने वाली मौतों तक के लिए कोई खेद नहीं प्रकट किया और न ही नोटबंदी के भयावह असर को लेकर। बल्कि इसने कई राजस्व कानूनों में गिरफ्तारी और कैद के प्रावधान शामिल कर दिए हैं।

राजनीति

यह देखना सुखद है कि कारोबारी उन मुद्दों पर आवाज उठा रहे हैं जो उनको नुकसान पहुंचा रहे हैं। परंतु एक सवाल का उत्तर बाकी है: सरकार अतार्किक रूप से दंडात्मक क्यों है? राजनेता कारोबारियों पर हमले क्यों कर रहे हैं और कानून हर किसी को अपराधी ठहराने पर क्यों तुले हैं? मुझे डर है कि बोलने वाले कारोबारी नेताओं और बाबुओं से लालफीताशाही कम करने की अपील करके दोबारा गलती कर रहे हैं।

जरा खुद से पूछिए कि आखिर क्यों मंत्री और उनके आईएएस सचिव निर्णय प्रक्रिया में देरी की लागत को क्यों नहीं समझते? उन्हें इतने नियमों, विविध लाइसेंस, अतीत से लागू होने वाले संशोधनों, लंबित अदालती मामलों, अतार्किक कर मांगों और दंडात्मक कानूनों से होने वाली दिक्कत क्यों नहीं दिखती? वे खुद को बढ़त दिलाने और कारोबारियों को उनकी जगह दिखाने के लिए जानबूझकर ऐसा करते हैं। वे चीजों को आसान बनाना नहीं चाहते। इन चीजों को सामान्य बनाने की मांग करने वाले राजनेता सीधे हैं। उन्हें इसके पीछे की राजनीति की समझ नहीं है।

मुद्रा एवं वित्त पर समग्र रिपोर्ट फिर से जारी करे रिजर्व बैंक

सम सामयिक

टीसीए श्रीनिवास-राघवन

कई दशकों तक भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) मुद्रा एवं वित्त पर समग्र रिपोर्ट प्रकाशित किया करता था। यह एक बेहतरीन रिपोर्ट होती थी जो भारतीय अर्थव्यवस्था की हालत बयां करने के साथ ही अभिलेख सामग्री के तौर पर भी काम करती थी।

अपने शुरुआती अवतार में इस रिपोर्ट में आर्थिक समीक्षा की तरह दो हिस्से- विश्लेषण और आंकड़े हुआ करते थे। फिर 2001 के आसपास आरबीआई की वार्षिक सांख्यिकी पुस्तिका सामने आई। लिहाजा आरसीएफ के दूसरे संस्करण को बंद कर दिया गया। उसके बाद यह एक विषयवस्तु आधारित प्रकाशन रह गया जो हर दो साल में एक बार आता था। लेकिन 2013 के बाद इसका प्रकाशन अचानक बंद हो गया। आखिरी संस्करण वर्ष 2013 में आया था। आरबीआई के तत्कालीन गवर्नर रघुराम राजन और डिप्टी गवर्नर ऊर्जित पटेल ने रिपोर्ट छपनी बंद होने की कोई भी वजह नहीं बताई थी।

असल में, 2008-2013 के दौरान आरबीआई गवर्नर रहे डी सुब्बाराव को भी इसकी सफाई देनी पड़ी थी कि 2008 के बाद पांच वर्षों में एक ही रिपोर्ट क्यों आई? सुब्बाराव के कार्यकाल में ही भारतीय अर्थव्यवस्था को लीमन संकट का सामना करना पड़ा था। अपने कार्यकाल के आखिरी दिनों में सुब्बाराव गैर-जिम्मेदार राजकोषीय नीति को लेकर शिकायतें कर रहे थे। आखिरकार 2013 में प्रकाशित अंतिम आरसीएफ रिपोर्ट में ये तमाम चिंताएं राजकोषीय एवं मौद्रिक विमर्श पर सुविचारित लेखों के रूप में नजर आईं। उसके बाद रघुराम राजन और ऊर्जित पटेल को यह बताने की जरूरत पड़ी कि उन्होंने आरसीएफ को चुपचाप क्यों दरकिनार कर दिया? आखिरकार गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों के पूर्ण खुलासे और त्वरित सुधारात्मक कदमों की शुरुआत होने के बाद इसकी सख्त जरूरत थी कि अगले आरसीएफ में वित्तीय स्थिति का सही लेखा-जोखा पेश किया जाए।

राजन को वह वजह भी बतानी चाहिए थी कि उन्होंने बैंकिंग प्रणाली में बेसल-3 मानक लागू करने का फैसला क्यों किया? निश्चित तौर पर उनके पास ठोस कारण रहे होंगे लेकिन वे क्या थे? क्या इस पर सही ढंग से चर्चा हुई थी? आरसीएफ यह बताने की सबसे अच्छी जगह होती। हम सभी यह समझ जाते और आरबीआई इतिहास के लेखकों को भी फाइलों तक पहुंच न होने से काफी मशक्कत करनी होती।

मेरी शिकायत यह है कि अगर राजन और पटेल ने यह सोचा था कि आरसीएफ जरूरतों को लेकर निरर्थक था तो उन्हें यह बताना चाहिए था कि उन्हें ऐसा क्यों लगा? अगर उन्होंने रिपोर्ट को खराब ढंग से लिखा हुआ माना तो वे सुधार सकते थे। इसके बजाय उन्होंने जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के कुलपति की तरह मनमाने ढंग से काम किया। इस बारे में कोई स्पष्टीकरण न होने से यह देखने में तो ऐसा ही लगता है।

यह सवाल भी उठता है कि अगर नरेंद्र मोदी की सरकार आने के बाद ऐसा हुआ रहता तो क्या प्रतिक्रिया रही होती? लेकिन 2013 में किसी ने भी एक शब्द नहीं बोला। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार मरणासन्न थी और सरकार में बैठे किसी भी शख्स ने इस पर गौर नहीं किया।

आरबीआई शोध की बहाली

आरबीआई के नए डिप्टी गवर्नर माइकल पात्र के पास शोध विभाग का जिम्मा होने से यह उम्मीद बंधती है कि आरबीआई इस समग्र रिपोर्ट को फिर से जारी करना शुरू करेगा। आखिर डॉ पात्र ने आरबीआई के साथ अपने लंबे करियर में इस रिपोर्ट पर कभी-न-कभी जरूर काम किया होगा लिहाजा वह किसी बाहरी व्यक्ति की तुलना में रिपोर्ट की अहमियत समझने की बेहतर हालत में हैं।

इसके अलावा सात साल के लंबे अंतराल के बाद देश की मौद्रिक एवं वित्तीय स्थिति के बारे में समग्र रिपोर्ट आने से नए मौद्रिक सिद्धांतों एवं वैश्विक प्रवृत्तियों को समझने का शानदार अवसर भी मिलेगा। इनके आधार पर भारतीय परंपराएं भी शुरू की जा सकती हैं। डॉ पात्र के जिम्मे केवल यही काम नहीं होगा। आरबीआई को 'ओकेजनल पेपर्स' रिपोर्ट भी जारी करनी है। इसमें आरबीआई के अपने अधिकारियों के शोधपरक लेख शामिल होते हैं। इसका पिछला संस्करण गत जुलाई में आया था। हरेक छह महीने पर जारी होने वाली रिपोर्ट के नए संस्करण का वक्त आ गया है। इसके साथ एक समस्या यह है कि यह एक व्यर्थ रिपोर्ट हो चुकी है और इसकी गुणवत्ता में भी अस्थिरता देखी जाती रही है। जो भी हो, इससे यह जानकारी तो मिल ही जाती है कि आरबाई किस तरह के शोध को बढ़ावा दे रहा है? डॉ पात्र को इस रिपोर्ट का प्रकाशन भी अपने हाथ में लेने की जरूरत है ताकि उसे अंतरराष्ट्रीय मानदंडों के मुताबिक ढाला जा सके। ओकेजनल पेपर्स का स्तर इतना ऊंचा हो जाए कि आरबीआई के बाहर के विशेषज्ञ भी उसमें अपने लेख प्रकाशित होने की मंशा रखने लगें। उबाल इतना अधिक है कि हम सांस्थानिक आधार पर उसे नहीं पकड़ पा रहे हैं। इसका बड़ा हिस्सा ट्विटर उपयोगकर्ताओं के रहमोकरम पर छोड़ा जा चुका है। खासकर मैं उनसे यह अनुरोध करूंगा कि वह इस प्रयास में भारतीय आर्थिक सेवा (आईईएस) के अर्थशास्त्रियों को अपने साथ जोड़ें। उनके पास भले ही विदेशी विश्वविद्यालयों से डॉक्टरेट की डिग्री न हो लेकिन वे भारतीय अर्थव्यवस्था की गतिशीलता को कहीं बेहतर ढंग से समझते हैं।

पिछले वर्षों में आईईएस एक तरह से अधीनस्थ सेवा बनकर रह गई है जिसे किसी भी तरह का प्रोत्साहन नहीं मिलता है। इसकी वजह यह है कि आईईएस अधिकारियों के प्रमुख यानी सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार के पास इसके लिए वक्त ही नहीं होता है। कौशिक बसु इसके इकलौते अपवाद थे।

मुझे पूरा भरोसा है कि डॉ पात्र को वित्त मंत्री का भरपूर सहयोग मिलेगा। वित्त मंत्री को कड़ी मेहनत करने वाले लोगों की जरूरत है, न कि हमेशा अपना रिज्यूमे सुधारने की कोशिश में लगे रहने वाले लोगों की।

कानाफूसी

घर में ही आलोचना

संयुक्त राष्ट्र की जलवायु परिवर्तन शिखर वार्ताओं में दुनिया को यह दिखाने के लिए हरसंभव कदम उठाए जा रहे हैं कि स्थायी विकास और आर्थिक परिवर्तन के क्षेत्र में नियमित और स्थायित्व भरी नीतियों की मदद से क्या कुछ हासिल किया जा सकता है। परंतु कुछ सदस्यों को अपने घर में ही कटु आलोचना का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी 26वीं शिखर वार्ता की अध्यक्ष ब्रिटेन की क्लेयर ओनील भी ऐसे लोगों में शामिल हैं। दिल्ली में हाल ही में आयोजित एक गोलमेज बैठक में उन्होंने एक मां से कहा, 'मेरी बेटी पर्यावरण को बचाने के लिए लड़ रही एक प्रदर्शनकारी है। वह मुझसे कहती है कि मैं जो कुछ भी कर रही हूं वह पर्याप्त नहीं हैं। मैं जवाब में उससे यही कहती हूं कि मैं जो कुछ कर सकती हूं कर रही हूं।' गौरतलब है कि जलवायु परिवर्तन से संबंधित आयोजित एक बैठक में एक छात्रा ग्रेटा थनबर्ग के बयान ने दुनिया को इस पर फिर से सोचने पर मजबूर कर दिया।

मध्य प्रदेश के दामाद

जगत प्रकाश नड्डा को भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का नया राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाए जाने के बाद मध्य प्रदेश में खासी खुशियां मनाई गईं। खासतौर पर प्रदेश के जबलपुर शहर में लोगों की खुशी का ठिकाना नहीं था। कारण? नड्डा की पत्नी मल्लिका जो हिमाचल प्रदेश में इतिहास की प्रोफेसर हैं, वह जबलपुर से ताल्लुक रखती हैं। यही कारण है कि नड्डा के अध्यक्ष बनने के बाद उनके परिवार के पड़ोसी मिठाइयां बांटते देखे गए। नड्डा की सास जयश्री बनर्जी मध्य प्रदेश विधानसभा और लोकसभा, दोनों स्थानों पर जबलपुर का प्रतिनिधित्व कर चुकी हैं। मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री कमल नाथ ने नड्डा को मध्य प्रदेश का दामाद कहते हुए बधाई दी। नाथ ने कहा, 'राज्य के दामाद नड्डा जी को भाजपा का राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने जाने पर बधाई।'

आपका पक्ष

देश की आंतरिक सुरक्षा की चुनौतियां

ऐसा कहा जाता है कि जिस देश की आंतरिक सुरक्षा जितनी मजबूत होगी, वह देश उतना ही दीर्घजीवी होगा। अन्यथा वह अपनी एकता, अखंडता और संप्रभुता को सुरक्षित नहीं रख पाएगा। यह आंतरिक सुरक्षा का मुद्दा चर्चा के केंद्र में इसलिए आया कि हाल में जम्मू कश्मीर में पदस्थापित एक डीएसपी दविंदर सिंह दो आतंकियों को अपनी कार से श्रीनगर ले जा रहा था। उन आतंकियों का संबंध हिजबुल मुजाहिद्दीन से था। जम्मू कश्मीर पुलिस और सुरक्षा एजेंसियों की सतर्कता से एक बड़ी घटना टल गई। सवाल यह उठता है कि क्या वजह है जो कुछ लोग आसानी से देश की सुरक्षा का सौदा करने को तैयार हो जाते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। अगर दविंदर सिंह का उदाहरण देखें तो 12 लाख रुपये के लिए उसने यह सौदा किया। इसके अलावा सुरक्षा एजेंसियों के बीच तालमेल में कमी, आतंकी फंडिंग, धनशोधन, हवाला, साइबर हमले

मध्य प्रदेश के जबलपुर में पिछले दिनों सारंग तोप का सफल परीक्षण किया गया -पीटीआई

आदि ऐसे कारक हैं जो समय-समय पर आंतरिक सुरक्षा की अग्नि परीक्षा लेते रहते हैं। आंतरिक सुरक्षा में चूक के परिणाम गंभीर हो सकते हैं, जो देश की एकता एवं अखंडता के समक्ष खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। देश की आंतरिक सुरक्षा संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिए अनेक एजेंसियों का गठन किया गया और कानून पारित किए गए हैं। वर्ष 2008 के मुंबई हमले के बाद वर्ष 2009 में राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) का गठन किया गया। इसके अलावा आईबी, डीआरआई, सीईआरटी-इन आदि आंतरिक सुरक्षा के लिए समर्पित जांच एजेंसियों को स्थापित किया गया। आतंकवाद रोकने के लिए संसद से टाडा, पोटा जैसे कानून पारित किए गए। वर्तमान में अनलॉफुल एक्टिविटीज प्रीवेंशन ऐक्ट 1967 (यूएपीए) इस दिशा में प्रभावी है, जिसमें हाल ही में 2019 में पांचवां संशोधन किया गया। इसके तहत भारत में पहली बार ऐसी कानूनी व्यवस्था की गई कि किसी व्यक्ति के भी आतंकी गतिविधि में लिप्त पाए जाने पर उसे आतंकवादी घोषित किया जा सकेगा। इससे पूर्व यह व्यवस्था सिर्फ संगठन पर ही लागू था। बहरहाल, सर्वप्रथम सुरक्षा एजेंसियों, राज्य की पुलिस और अन्य सभी साझेदारों के बीच बेहतर तालमेल होना चाहिए। अत: देश की अखंडता व एकता के लिए आंतरिक सुरक्षा के मोर्चे पर और प्रभावी तरीके से बढ़ना होगा।

द्विजेंद्र कौशिक, ईमेल से

साफ पानी कैसे मिल पाएगा

हाल में नीति आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2030 तक 40 प्रतिशत आबादी के पास पीने का साफ पानी उपलब्ध नहीं होगा। देश के कई राज्यों में जल संकट ने दस्तक दे दी है। इन राज्यों का भूजल स्तर गिरता जा रहा है। मोदी सरकार ने देश के हर घर तक नल से जल की योजना का लक्ष्य निर्धारित किया है। अगर बारिश के कम होने के कारणों पर ध्यान नहीं दिया गया तो वह दिन दूर नहीं जब लोग साफ पानी के लिए तरस जाएंगे। यह कहना उचित होगा कि जब देश में सूखे की स्थिति पैदा होती है तब पानी बचाने के उपाय करने लगते हैं। लेकिन जब गर्मी का मौसम खत्म होते ही सब भूल जाते हैं। अत: बारिश के पानी को संभालना बहुत जरूरी हो गया है। अगर आने वाली पीढ़ी के लिए साफ पानी बचाकर रखना है तो सभी लोगों को हर हाल में पानी बचाने का प्रण करना होगा।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।